'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की ध्रुवस्वामिनी का चरित्र-चित्रण

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक नाटककार जयशंकर प्रसाद प्रणीत नाट्य-कृतियों में अंतिम है। जयशंकर प्रसाद की सभी नाट्यकृतियों की नायिकाओं में ध्रुवस्वामिनी सबल एवं सशक्त है। ध्रुवस्वामिनी में युग-युग से शोषित तथा पददलित नारी की विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया अभिव्यक्त हुई है। कोमा भारतीय नारी के उस सनातन रूप की प्रतिकृति है, जो अन्तर्मन की कोमलता लेकर जीवन में सबसे हारी रहती है और ध्रुव-स्वामिनी उस पौरुष पूर्ण स्त्री की प्रतीक है, जो अपनी कोमल काया के भीतर एक विराट् शक्ति का अनुभव करती है जिसके समक्ष संसार की सभी शक्तियाँ प्रणत हो जाती हैं। इसलिए नाटककार ने ध्रुवस्वामिनी के चरित्राङ्कन के लिए कोमा को पृष्ठाधार बनाया है।

समुद्रगुप्त की विजय के उपलक्ष्य में ध्रुवस्वामिनी भेंट के रूप में गुप्तकुल में आयी। रामगुप्त जैसे कापुरुष के साथ वह अनचाहे ही ब्याह दी गयी। इतना सब अविरोध के हो गया। जैसे कि ध्रुवस्वामिनी के हृदय में कोई स्पंदन ही न हो, उसकी स्वभाव में कोई रस ही न हो, उसकी इच्छा-अनिच्छा का कोई मूल्य न हो। ध्रुवस्वामिनी के अंदर ही अंदर विद्रोह करने लगा है। उसे राजकुल में कहीं भी संपूर्ण मनुष्यता का निदर्शन नहीं होता, जिधर देखो कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूँगे और बहरे दिखाई पड़ते हैं। उसने अपने पति का मधुर संभाषण तक नहीं सुना। विलासिनियों के साथ मदिरा उन्मत्त रामगुप्त को उससे बात करने का अवकाश ही कहाँ है। ध्रुवस्वामिनी जीवन की समस्त परिस्थितियों का साहस पूर्वक सामना करती है परन्तु दाम्पत्य जीवन की विफलता उसको भावुक बना देती है।

क्लीव रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी जैसी मनस्विनी नारी का पति नहीं हो सकता। शकराज का दूत रामगुप्त के पास संधि का प्रस्ताव लेकर आता है। वह उपहार की अन्य वस्तुओं में गुप्तकुल की सर्वश्रेष्ठ मणि ध्रुवस्वामिनी को भी भेंट रूप में चाहता है और कापुरुष, मद्यप, निर्लज्ज, विलासी रामगुप्त उस अपमानजनक संधि को भी स्वीकार कर लेता है। सच बात तो यह है कि वह अपने कलुषित हृदय के कारण ध्रुवस्वामिनी को चन्द्रगुप्त में आसक्त समझता है। इसलिए ध्रुवस्वामिनी को उपहार रूप में शकराज के पास भेजने में कोई हानि नहीं समझता। ध्रुवस्वामिनी का नारी हृदय रोष और क्षोभ से भर जाता है। वह रामगुप्त से पाणिग्रहण के समय की गई प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाकर पूछती है—

'मैं जानना चाहती हूँ कि किसने सुख-दुःख में मेरा साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा अग्निवेदी के सामने की है? तो वह मद्यप रामगुप्त उत्तर देता है—

मैं तो उस दिन डाँवाडोल में डुबकी लगा रहा था। पुरोहितों ने न जाने क्या-क्या पढ़ दिया होगा। उन सब बातों का बोझ मेरे सर पर (सिर हिलाकर) कदापि नहीं।"

मानो शताब्दियों से पुरुषों के अत्याचार में पिसती हुई नारी की वेदना ध्रुवस्वामिनी के कंठ से मुखरित हो उठती है :—

'मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-सम्पत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते। हाँ, तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं यहाँ से स्वयं चली जाऊँगी।'

परन्तु ध्रुवस्वामिनी देखती है कि वह उतना तक करने को स्वतंत्र नहीं। अपने सतीत्व की रक्षा का कोई उपाय न देखकर वह पैर पकड़ कर रामगुप्त से पति रूप में न सही राजा के रूप में प्रार्थना करती है—

'राज्य और सम्पत्ति रहने पर राजा को, पुरुष को बहुत-सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं किन्तु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।'

परन्तु रामगुप्त अभ्यर्थना का उत्तर देता है—

'तुम मेरी रानी? नहीं-नहीं। जाओ तुमको जाना होगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति

ध्रुवस्वामिनी इस मानसिक यंत्रणा को सहन नहीं कर पाती। उसका आत्मगौरव जागृत हो जाता है। इस स्थल पर नाटककार प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी के मुख से जो शब्द कहलाये हैं, वे नारी जगत के लिए गौरव की वस्तु है—

'निर्लज्ज! मद्यप! क्लीव! ओह तो मेरा कोई रक्षक नहीं? नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी! मैं उपहार में देने की वस्तु शीतल मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की

तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।'

वह आत्मगौरव की रक्षा के लिए रसना से छुरी निकाल कर आत्महत्या करना चाहती है परन्तु उसी समय सहसा चन्द्रगुप्त के प्रवेश के कारण रुक जाती है। यद्यपि चन्द्रगुप्त शकराज का सामना करने को स्वयं जाना चाहता है किन्तु एक सच्ची क्षत्राणी की भाँति मृत्यु का सामना करने के लिए वह साथ चलने का आग्रह करती है। उत्साहपूर्ण शब्दों में चन्द्रगुप्त से कहता है—

'हम दोनों ही चलेंगे। मृत्यु के गह्वर में प्रवेश के समय, मैं भी तुम्हारी ज्योति बनकर बुझ जाने की कामना रखती हूँ और भी एक विनोद — प्रलय का परिहास देख सकूँगी।'

वह शकराज की हत्या में चन्द्रगुप्त की सहायता करती है। उसी की प्रेरणा से चन्द्रगुप्त उत्तेजित होकर शकराज की सेना का विध्वंस करते हैं तथा उसी की प्रेरणा से राजपुरोहित चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी के विवाह के सम्बन्ध में यह निर्णय देता है :—

'विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रान्तिपूर्ण बंधन में बाँध दिया है।'

ध्रुवस्वामिनी विवेकशील नारी है। कोमा से प्रसन्न न रहकर भी वह [illegible] उसे धन्य कहती है और दूसरी ओर मिहिरदेव की हत्या से दुःखी हो जाती है। झूठे धर्म के पोषक पुरोहित को डाँटती हुई कहती है — "पुरोहित! तुमने जो मेरा राक्षस-विवाह कराया है उसका उत्सव भी कितना सुन्दर है! यह जनसंहार देखो, अभी उस प्रकोष्ठ में रक्त से सनी हुई शकराज की लोथ होगी। कितने ही [illegible]" [illegible] ध्रुवस्वामिनी का जीवन इतना घुटन और संघर्षपूर्ण है कि नाटकीय कथावस्तु के अन्तर्गत उसके मधुर भाव की अभिव्यक्ति के अधिक अवसर प्राप्त नहीं होते। फिर भी नाटककार ने उसके ओजस्वी व्यक्तित्व में उसके हृदय के मधुर पक्ष की भी एक झाँकी प्रस्तुत की है जिसके कारण उसका नारीत्व प्रकृत रूप में व्यक्त हो गया है। ध्रुवस्वामिनी का चरित्र विकासात्मक दृष्टि से पूर्ण है। नाटककार को इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।